Anukriti (An International Peer Reviewed Multidisciplinary Refereed Research Journal) Impact Factor : 7.125
Vol. 15, No. 3, March 2025 ISSN : 2250-1193

महाकवि जयशंकर प्रसाद के काव्य में व्यंजना वैशिष्ट्य

डॉ. अनामिका द्विवेदी
एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी, ए.के.पी. (पी.जी.) कॉलेज, खुर्जा

"व्यंजना" शब्द 'वि' उपसर्ग 'अज' धातु (अन प्रत्यय) से बना है जिसका अर्थ है प्रकाशित करना या प्रकट करना अथवा ध्वनित करना। काव्यशास्त्र में व्यंजना का वह प्रयोग ध्वनित (व्यंजित) करने वाली (शक्ति) के अर्थ में प्रचलित हो गया है। व्यंजना शब्द शक्ति से तात्पर्य हुआ शब्द या वाक्य का सुदूरवर्ती अर्थ ध्वनित या सांकेतिक या अनुमानित करने वाली शक्ति। इस प्रकार व्यंजक शब्दों या वाक्यों से प्रकट होने वाले अर्थ को व्यंग्यार्थ, ध्वन्यार्थ या प्रतीयमान अर्थ आदि कहा जाता है। यह अर्थ प्रसंग, परिस्थिति आदि के आधार पर सांकेतित रूप में प्रकट होता है, जिसे हम सूक्ष्म विचार, कल्पना अथवा भाव–दृष्टि से निहित अभिप्राय को भॉप लेते है। यह अर्थ 'न तो वाच्य या कथित होता है, न सीधे लक्षित, अपितु ध्वनित या व्यंजित होता है। जैसे साधारण से लगने वाले वाक्य– 'संध्या हो गई' का अर्थ कर्मरत लोगों के लिए, छात्रों के लिए, गृहिणी के लिए, पुजारी के लिए, चोरों के लिए, अभिसारिका के लिए भिन्न प्रसंगानुकूल होगा, एक समान नहीं। आचार्य मम्मट ने व्यंग्यार्थ के संग्रह के लिए वक्ता, ग्राहक, ध्वनि विकार, वाक्यान्वय, वाच्य प्रकरण, देश–काल आदि की विशिष्टता का ध्यान आवश्यक बताया है–

वक्तृ बोध रूप काकूनां वाक्य वाच्यान्य सन्निधेः।
प्रस्ताव देश कालादिवैशिष्यात् प्रतिभाजुषम्।
योऽर्थस्यान्यर्थ धीहेतुर्व्यापारो व्यक्तरेव सा।[1]

इसी विशेषता के कारण प्रतिभावान् सामाजिक वाच्यार्थ और लक्ष्यार्थ से भिन्न व्यंग्यार्थ की सम्प्राप्ति होती है । अस्तु ध्वनि–सिद्धान्त उसी व्यंजनार्थ पर ही आधारित है। क्रमशः वाच्यार्थ से लक्ष्यार्थ और दोनों भिन्न व्यंग्यार्थ, काव्यार्थ की अभीष्ट उदात्त अभिव्यंजना करता है।

सामान्य अर्थ में 'ध्वनि' शब्द या आवाज होती है। व्युत्पत्यार्थ की दृष्टि से 'ध्वन्यते अनेन इति ध्वनिः' अर्थात् जिससे ध्वनि उत्पन्न होती है उसे ध्वनि कहते हैं। इस अर्थ में 'ध्वनि' और 'व्यंजना' पर्यायवाची ही हैं। दूसरे 'ध्वनिनं ध्वनिः' अर्थात् ध्वनित होना ही ध्वनि है। घंटा या संगीत वाद्य की क्रमशः सुदूर तक प्रसरित होती हुई ध्वनि के समान रस, अलंकार, वस्तु आदि काव्यार्थ भी ध्वनित होते हैं, अतः वे सब ध्वनि ही हैं । ध्वनित होना ध्वनि का कार्य या सिद्धि रूप है और ध्वनित करना उसकी शाब्दिक अभिव्यक्ति की शक्ति रूप–गुण या सामर्थ्य है।

(उस आस्वादमय (रसभाव रूप) अर्थतत्व को प्रवाहित करने वाली महाकवियों की वाणी (उनके) अलौकिक, प्रतिभासमान प्रतिभा, (अपूर्व वस्तु निर्माण क्षमा प्रज्ञा) के वैशिष्ट्य को प्रकट करती है।) और

'शब्दार्थ शासन ज्ञान मात्रेणैव न वेद्यते।
वेद्यते स तु काव्यार्थ तत्वैज्ञैरेव केवलम्।' [7]

(वह (प्रतीयमान अर्थ) शब्द–शास्त्र (व्याकरणादि) और अर्थशास्त्र (कोशादि) के ज्ञान मात्र से ही प्रतीत नहीं होता, वह तो केवल काव्यमर्मज्ञों को ही विदित होता है।)

महाकवि जयशंकर प्रसाद का अभिजात काव्य विशेष रूप से शब्द–सौकर्य और व्यंजना शक्ति से विशेष ओत–प्रोत है और वह इस दृष्टि से भी विवेच्य है। इस महाकवि ने हिन्दी के साहित्याकाश में उत्पन्न होकर उसकी काव्य–भाषायी और अर्थ गरिमा को जो अभिजात्य ऊँचाई प्रदान की वह उसके समुन्नत विशाल भावुक हृदय, राष्ट्र एवं राष्ट्र भाषा प्रेम, सुसंस्कृति, सुसंगति, स्वाध्याय, संस्कृत और वेदशास्त्रों की प्रगाढ़ विद्वत्ता, मनन और नवचिंतन तथा उदात्त भाषागत काव्य ध्वनि पर ही आधारित है। विशाल हृदयी व्यक्ति के भाव–विचार, वेशभूषा, वाणी, कार्य– शैली और व्यवहार तथा सर्जनात्मक अभिव्यक्ति आदि सभी में एक निराला औदात्य होता है। उसकी विशिष्ट प्रतिभा की प्रखरता ही उसके शारीरिक, मानसिक रूप में और कृतित्व में अपने निराले आकर्षक व्यक्तित्व का परिचय देती है।

महाकवि प्रसाद की वाणी–वैभव जितना ही उदात्त है उतना ही सीधा, सुलझा हुआ भी। उनके स्वाध्याय की सीमाओं को न छू पाने वाला व्यक्ति उनके कृतित्व में निहित भावों विचारो तक न पहुंच पाये, यह अन्य बात है किन्तु उनका काव्य कहीं भी उलझा हुआ या उलझाने वाला नहीं है, साथ ही वह सहृदय अध्येताओं को तत्क्षण ही भावाभिभूत करने में समर्थ है– एक बार 'निराला' की भाषा और भावभूमि में पाठक

को कठिन काव्य के प्रेत के दर्शन हो सकते हैं किन्तु प्रसाद की भावपूर्ण अभिव्यक्ति संस्कृतनिष्ठ उदात्त मृषण भाषा प्रवाह तथा उनकी सुष्ठु शैली सहृदय सुधी पाठक को यंत्रवत् वशीकृत करने में पूर्ण समर्थ है : 'प्रसाद' अतीत से चलकर वर्तमान तक आते हैं और राष्ट्रीय भविष्य पर दृष्टि रखते हैं। यद्यपि वे यौवन–सौन्दर्य और प्रेम के कवि माने जाते हैं किन्तु उनका वह ऐहिक मानसिक व्यक्तित्व, उनका आदर्श व्यक्तिगत है, स्पर्धा या अनुकरण नहीं, किन्तु कालिदास जैसे संस्कृत कवियों की शैलीगत प्रभाव माना जा सकता है। महाकवि 'निराला' अतीत से अधिक वर्तमान में है उन शैलीगत प्रभाव के अतिरिक्त, उनके आवेशी औद्धत्य में साधनात्मक स्पर्धा भी है। (लखो दिया है पहना, किसने यह हार बना) श्री सुमित्रानन्दन पन्त मात्र वर्तमान में हैं वे कोमल सौन्दर्यवादी प्रकृति के कवि हैं, किन्तु संतुलनात्मक स्थान बनाने मे व्यस्त हैं, वे सुकुमार मार्ग के दिव्य कवि हैं और श्रीमती महादेवी अंतस्थः, तथा रहस्यमय के लिए कारुणिक होकर नारी मन लुटाने वाली हैं। वे सूफियों की भूमिका पर अधिक हैं किन्तु वैदिक भूमिका पर कभी–कभी। वे 'अलि ! मैं हूँ अरुण सुहाग भरी' हैं किन्तु 'कौन तम के पार, रे कह' के प्रश्न से बूझती हैं। 'प्रसाद' व्यंजना, निराला 'अभिधा', पंत 'लक्षणा' और सुश्री महादेवी प्रतीक में रमी हुई हैं।

एक तथ्य और भी है। प्रत्येक कवि का एक स्थायी भाव होता है जो उसकी रचनाओं में प्रायः रूपान्तरित नूतन शब्दावली में बिंधा रहता है या अभिव्यक्ति पाता रहता है वह उसका मार्मिक प्रेरक उत्स होता है। उसकी भावाभिव्यक्ति शैली का भी व्यक्तिगत स्वरूप होता है जो उसके अपेक्षित शब्द–ज्ञान, शब्द–चयन में, समग्रतः काव्य भाषा के रूपायन को स्पष्टतः प्रभावित करता है। कवि विशेष की रचना–प्रक्रिया उसी तत्व और रुप में अभिव्यक्ति पाती है और उसकी शैली का मुख उद्घोष करती हैं प्रसाद, पंत, निराला या महादेवी सभी अकेले हैं अस्तु कई आकांक्षा पाले हुए हैं। श्री प्रसाद जी के कृतित्व – पथिक, लहर, ऑसू और कामायनी तथा अनेक कहानियों में उनकी समान निहित है : अन्वेषी अध्येता अनुभव कर सकेंगे। यहाँ हम उस विस्तार में न जाकर, मात्र प्रसाद का काव्याभिव्यक्ति में निहित व्यंजना तत्व पर ही संक्षिप्त विचार करना चाहेंगे–

हाँ किशोर, मैं भी सब देकर वेतन–भुक्त पुजारी सी
उस पत्थर का आराधन दिन रात किया ही करती थी– [7]

व्यंजना में वाच्य अर्थ की अपेक्षा व्यंग्य अर्थ अधिक चमत्कारपूर्ण होता है। जहाँ वाचक विशेष (शब्द) अपने अभिधेयार्थ को और वाच्य विशेष (अर्थ) स्वयं को गौण करके प्रतीयमान (व्यंग्य) अर्थ को प्रकाशित करते हों वहां ध्वनि–काव्य होता है। इस दृष्टि से उपर्युक्त उद्धरण को देखना चाहिए– 'मैं भी सब देकर (अपना समस्त तन–मन और जीवन–सुख अपूर्ण करके), वेतन–भुक्त, पुजारी–सी (उपमार्थ एकनिष्ठ भाव से) उस पत्थर का आराधन (अपने कठोर हृदयी प्रेमी की याद) किया ही करती थी। इसके आगे भी प्रेमिका का प्रेम – साधनात्मक कोई विम्ब – व्यंग्य उभरता है। काव्य मे सारभूत तत्व के रूप में निहित अर्थ के दो स्वरूप होते है– 'वाच्य और प्रतीयमान। अलंकारवादियों के उपमादि अलंकार वाच्य के अंतर्गत आते हैं। भूषणों और अंगों में सौन्दर्य होता है, किन्तु तभी जब व्यक्ति में लावण्य हो। लावण्य अवयवों और आभूषणों के सौन्दर्य से भिन्न वस्तु है। लावण्य सदृश काव्यगत प्रतीयमान अर्थ की भिन्न सत्ता होती है– वाच्य की प्रतीति मात्र शब्दार्थ – बोधक होती है। किन्तु उपर्युक्त उद्धरण में व्याख्यायित भावपूर्ण व्यंग्यार्थ भी है, देखा जा सकता है। उपमा और रूपक प्रतीक वाच्य और वाच्यार्थ से विरत होकर अंततः लक्षित व्यंग्यार्थ पर ले जाते हैं– इसी प्रकार निम्नलिखित अन्य उद्धरण भी देखे जा सकते हैं–

(क) हृदय–विश्व का तत्व निहित है जिसमें दो ही अक्षर में,
उसकी लिपि पढ़ने का यत्न न करता निष्ठुर हो कोई।[8]

(ख) प्रयत्न तत्व खँडहर खुदवाता फिरता है जहाँ कहीं,
नहीं देखता है नवनीत–रचित कितने सुन्दर मन्दिर,
पाकर हल्की आँच गले वे ढेर हुए हैं अंतर में।[9]

(ग) एक सिन्धु में मिलकर अक्षय सम्मेलन होगा सुन्दर,
फिर न बिछुड़ने का पथ तुमको मुझको होगा कहीं कभी। आओ गले नहीं प्रत्युत हम हृदय–हृदय से मिल जायें।[10]

वाच्य केवल शब्द में आश्रित रहता है किन्तु ध्वनि की प्रतीति शब्द, शब्दांश, वर्ण, संघटना अथवा प्रबन्ध से हो सकती है। शब्दाश्रित वाच्य या अभिधार्थ अपनी प्रथम प्रतीति कराकर विरत हो जाता है और लक्ष्यार्थ व्यंजना या ध्वन्यर्थ व्यंजना की अवतारणा होती है। लक्षणा अभिधा के बंधन से मुक्त नहीं होती।

अतएव लक्षणा अमिधा से प्रतिबंधित होती है किन्तु ध्वन्यर्थ व्यंजना मात्र अमिधा–संकेतित होती है जो भिन्न–भिन्न रूपों में तात्पर्य की ओर ले जाती है, दृष्टव्य है

(क) तुम हो कौन और मैं क्या हूँ, इसमें क्या है धरा, सुनो!
मानस – जलधि रहे चिर चुम्बित मेरे क्षितिज उदार बनो। [11]

(ख) यह विडम्बना! अरी सरलते! तेरी हँसी उड़ाऊँ मैं।
भूले अपनी या प्रवंचना औरों को दिखलाऊँ मैं। [12]

(ग) मिला कहाँ वह खुख जिसका मैं स्वप्न देखकर जाग गया,
आलिंगन में आते–आते मुसक्याकर जो भाग गया। [13]

(घ) मधु सरिता उफनी अकुलाई
देने को अपना संचित धन
छिन्न पात्र में था भर आता
वह रस बरबस था न समाता।

(ङ) पागल रे! वह मिलता है कब।
उसको तो देते ही हैं सब
ऑसू के कन–कन में गिनकर।

उपर्युक्त उद्धरणों में वाच्यार्थ सर्वथा आग्राह्य होकर भिन्न व्यंग्यार्थ व्यंजना करते हैं। प्रयुक्त शब्द–विशेष वाच्यार्थ से भिन्न व्यंग्यार्थ का संकेत करते हैं। आगे कामायनी के इस उद्धरण से तुलना कीजिए।

आर्थी रूपक–व्यंजना–

(क) मानस सागर के तट पर क्यों लोल–लहर की घातें ?
कल–कल ध्वनि से हैं कहती, विस्मृति की बीती बातें।

(ख) विद्रुम – सीपी संपुट में, मोती के दाने कैसे ?
हैं 'हंस न, 'शुक' यह, फिर क्यों चुगने को मुक्ता ऐसे?[17]

(ग) लहरों में प्यास भरी है, है भँवर पात्र भी खाली,
मानस का सब रस पीकर लुढ़का दी तुमने प्याली ! [18]

(घ) छिप गई कहाँ छूकर वे मलयज की मृदुल हिलोरें,
क्यों घूम गई हैं आकर करुणा–कटाक्ष की कोरें ? [19]

शाब्दी प्रतीक व्यंजना–

(क) वह रूप, रूप था केवल या हृदय रहा भी उसमें,
जड़ता की सब माया थी, चौतन्य समझ कर मुझमें, [20]

(ख) ज्यों–ज्यों उलझन बढ़ती थी बस शांति बिहॅसती बैठी,
उस बंधन में सुख–बॅधता, करुणा रहती थी ऐंठी, [21]

(ग) हिलते द्रुम–दल चल किसलय, देती गलबाहीं डाली
फूलों का चुम्बन छिड़ती– मधुपों की तान निराली ।।[22]

(घ) मेरी मानस पूजा का पावन प्रतीक अविचल हो,
झरता अनंत यौवन– मधु अम्लान स्वर्ण शतदल हो।[23]

छायावाद की सुपुष्ट आधारशिला रखने वाले विशिष्ट कवि निराला जहाँ सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक अभिव्यंजना, ओज, नवीन काव्य दिशाओं और दशाओं के प्रयोक्ता हुए, पंत अपने भाषाधिकार और कोमलवृत्ति के प्रवर्तक हुए तथा महादेवी जहाँ नारी भावना, प्रगीति और प्रतीक के महार्घ सिद्ध हुई, वहीं छायावाद के समग्र प्रतिनिधित्व की महाव्याहृति अकेले 'प्रसाद' जैसे हिमगिरि से ही संभव हुई। उक्त कवियों की उन अनेक विशेषताओं के साथ 'प्रसाद' की व्यापक सूक्ष्म सौंदर्य चेतना, प्रकृति का व्यापकतम मानवीकरण, स्वाध्यायपूर्ण सांस्कृतिक परिपक्वता, व्यापक ज्ञान–दृष्टि और वर्तमान सामाजिक, राजनीतिक तथा वैज्ञानिक और आध्यात्मिक संस्कृति के प्रति पैनी दृष्टि, अनुभव की वयस्कता से काव्य–विम्बों का विशाल विस्तृत अनुभूत्यात्मक पट, सुविवेकपूर्ण ऐतिहासिक राष्ट्र चिंतन, सांस्कृतिक दृष्टि, सुसंस्कृत स्वभाव गुण, उदात्त भाषा, सुपुष्ट, प्रौढ मौलिक अभिव्यंजना शैली आदि अनेक अपेक्षित काव्य गुणों की सूझ–बूझ अत्यन्त ही प्रखर थी जो समग्रतः छायावादी साहित्य चेतना का सम्पूर्ण प्रतिनिधित्व करने में सर्वप्रकार से समर्थ थी । यही नहीं यदि उनकी कृतियों को अन्य विश्व कवियों की कृतियों की तुलना में रखा जाय तो प्रसाद उनमें भी अप्रतिम

ही ठहरेंगे। काश – 'ऑसू' और 'कामायनी' का अनुवाद अन्य भाषाओं में भी संभव हो पाता ? कामायनी की काव्य भाषा उदात्त व्यंजना शैली की आदर्श है– पराकाष्ठा है–दृष्टव्य है–

(क) हिमगिरि के उत्तुंग शिखर पर बैठ शिला की शीतल छाँह,
एक पुरुष भीगे नयनों से, देख रहा था प्रलय प्रवाह।[24]

यहाँ 'एक पुरुष' (सुदृढ़ पौरुष सम्पन्न), हिमगिरि के उतुंग शिखर के अतिरिक्त जिसे ठहरने के लिए अन्यत्र न्याय नहीं था क्योंकि शेष भूमण्डल प्रलय–प्रवाह निमग्र था। व्यक्ति नहीं, पौरुष सम्पन्न होकर भी उसके भीगे नयनों का कारण एवं उसकी परिस्थितिजन्य हार्दिक करुणा–कातरता का सहज अनुमान या अनुभव सहृदय कर ही सकते हैं। यह विरोधाभाषी व्यंजना चित्र रचना प्रभावशाली अर्थ है। सम्पूर्ण चिंता सर्ग उल्लेख से स्मृति – व्यंजना ही है। मनु की मार्मिक वेदना जिस चिंता के रूप में प्रस्तुत हुई हैं, वह समग्रतः व्यंजनात्मक ही है।

(क) ओ चिंता की पहली रेखा! अरी विश्व वन की व्याली।
ज्वालामुखी स्फोट के भीषण प्रथम कंप–सी मतवाली।[24]
(ख) मनन करावेगी तू कितना ?[25]
(ग) चिंता करता हूँ मैं जितनी, उस अतीत की, उस सुख की,
उतनी ही अनंत में बनती जाती रेखायें दुख की। [26]
(घ) अरी उपेक्षा भरी अमरते! री अतृप्ति! निर्बाध विलास।
द्विधा रहित अपलक नयनों की भूख भरी दर्शन की प्यास।[27]

अंतिम पद 'आशा' सर्ग की व्यंजनात्मक भूमिका प्रस्तुत करता है और उसके प्राथमिक पद से तारतम्ययुक्त हो जाता है–

'सौर चक्र में आवर्तन था, प्रलय–निशा का होता प्रात ? [28]
तथा– "ऊषा सुनहले तीर बरसती जय लक्ष्मी–सी उदित हुई।[29]

प्रलय– निवृत्त पृथ्वी पर प्रथम–प्रभात महोत्सव (वह विराट था हेम घोलता, नया रंग भरने को आज) और प्राणी जीवन के लिए धरती पर प्रथमतः वनस्पतियों का उगना, प्रकृत विश्व का उन्मीलन आदि तथा सविता दर्शन के साथ विराट विश्वदेव का अनुमान आदि सभी का व्यंजनात्मक वैदिक आधार है। कामायनी की व्यंजनात्मक अभिव्यक्तियाँ पग–पग पर विचारणीय हैं, विस्तृत अध्ययन अपेक्षित है। कामायनी में लक्षणामूला ध्वनि व्यंजनात्मक कोष की खोज की जा सकती है। उसी में 'कामायनी' के औदात्य का विशिष्ट सूत्र है।

(क) तप से संयम का संचित बल, तृषित और व्याकुल था आज,
अट्टहास कर उठा रिक्त का, वह अधीरतम सूना राज। [30]
(ख) सौंदर्यमयी चचंल कृतियाँ, बन कर रहस्य हैं नाच रहीं,
मेरी आँखों को रोक वहीं, आगे बढ़ने में जॉच रहीं।
मैं देख रहा हूँ जो कुछ भी, वह सव क्या छाया उलझन है ?
सुंदरता के इस परदे में क्या अन्य धरा कोई धन हैं ? [31]
(ग) नखत की आशा–किरण– समान, हृदय के कोमल कवि की कांत,
कल्पना की लघु लहरी दिव्य, कर रही मानस – हलचल शांत। [32]
(घ) कर रहा वंचित कहीं न त्याग, तुम्हें मन में धर सुंदर वेश। [33]
(ड.) तपस्वी! आकर्षण से हीन, कर सके नहीं आत्म–विस्तार। [34]
(च) तुम्हारा सहचर बनकर क्या न उऋण होऊँ मैं बिना विलम्ब। [35]
(छ) विश्व भर सौरभ से भर जाय सुमन के खेलों सुंदर खेल। [36]

(प्रतीकात्मक व्यंजना)

(ज) नित्य परिचित हो रहे तब भी रहा कुछ शेष
गूढ़ अंतर का छिपा रहता रहस्य विशेष । [37]
(झ) जागृत था सौंदर्य यदपि वह सोती थी सुकुमारी। [38]
(ट) एक चित्र बस रेखाओं का, अब उसमें है रंग कहाँ ? [39]
(ठ) एक मौन वेदना विचन की, झिल्ली की झनकार नहीं ? [40]
जगती की अस्पष्ट उपेक्षा एक कसक साकार रही।
जीवन में सुख अधिक या कि दुःख ? मुदाकिनि कुछ बोलोगी ? [41]

X X X X X X X

दग्ध श्वास से आह न निकले, सजल कुहू में आज यहाँ ?
कितना स्नेह जलाकर, जलता ऐसा है लघु दीप कहाँ ?
आज सुनूँ केवल चुप होकर कोकिल जो चाहें कह लें,
पर न परागों की वैसी है चहल–पहल जो थी पहले।
अरे मधुर हैं, कष्ट पूर्ण भी जीवन की बीती घड़ियाँ
जब निस्संबल होकर, कोई जोड़ रहा बिखरी कड़ियाँ।
विस्तृत हों वे बीती बातें अब जिनमें कुछ सार नहीं,
वह जलती छाती न रही, अब वैसा शीतल प्यार नहीं।[42]

निःसन्देह महाकवि जयशंकर प्रसाद का काव्य व्यंजना वैशिष्ट्य से अलंकृत है। उनके काव्य में शाब्दी व्यंजना तथा आर्थी व्यंजना के प्रायः सभी भेद–प्रभेद मिल जाते हैं। व्यंजनाओं के वैशिष्ट्य के कारण ही प्रसाद छायावाद युग के कालजयी कवि हैं।

सन्दर्भ–संकेत

1. काव्य प्रकाश, आचार्य मम्मट, तृतीय उल्लास, पृष्ठ 107
2. ध्वन्यालोक, आचार्य आनन्दवर्धन, 1/13
3–6. तदुपरिवत् 1/8, 1/5, 1/6, 1/7
7. प्रेम पथिक, जयशंकर प्रसाद, पृष्ठ 25
8–10. तदुपरिवत, पृष्ठ 25, 26, 32
11–15. लहर, जयशंकर प्रसाद, पृष्ठ 10, 11, 13, 17, 34
16–23. जयशंकर प्रसाद, ग्रन्थावली 'ऑसू' से, सं० रत्नशंकर प्रसाद, पृ० 303, 309, 312, 312, 310, 311, 311, 328
24–28. कामायनी, जयशंकर प्रसाद, चिंतासर्ग, पृ० 13, 17, 18, 23, 29
29–30. तदुपरिवत, आशा सर्ग, पृष्ठ– 33, 34
31. तदुपरिवत, कामसर्ग, पृ0 70
32–35. तदुपरिवत, श्रद्धा सर्ग, पृष्ठ 55, 61, 61, 61
36. तदुपरिवत, वासना सर्ग, पृष्ठ– 84,
37–42. तदुपरिवत, स्वप्न सर्ग, पृष्ठ 169, 170, 170, 171, 171, 171